विज्ञान शिक्षाः सिखाओ कम, सीखो ज़्यादा

पी. बलराम

बीते कई सालों से नीति निर्धारकों के गलियारों और मीडिया में इस बात पर विस्तार से चर्चा होती रही है कि हाईस्कूल के ऐसे होनहार विद्यार्थियों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती जा रही है, जो विज्ञान पढ़ना पसंद करते हों। एक मज़बूत धारणा बनी है कि होनहार विद्यार्थी कॉलेजों में विज्ञान की बजाय इंजीनियरिंग या मेडिकल पाठ्यक्रमों को ज़्यादा तवज्जो देते हैं। विज्ञान और गणित से यह अलगाव स्कूल के प्रारंभिक वर्षों में ही शुरू हो जाता है, जब वे विज्ञान को कठिन मानकर कॉमर्स और अन्य विषयों की ओर आकर्षित होने लगते हैं।

कॉलेज स्तर पर इंजीनियरिंग, मेडिसिन और फार्मेसी जैसे कुछ पाठ्यक्रमों को 'प्रोफेशनल' माना जाता रहा है। इस नामकरण का एक मतलब यह निकाला जा सकता है कि खासकर विज्ञान एवं मानविकी सम्बंधी अन्य पाठ्यक्रम 'गैर प्रोफेशनल' हैं और इनसे लाभदायक क्षेत्रों में अच्छी नौकरी हासिल नहीं की जा सकती।

हमारे यहां 'शिक्षा' शब्द के स्थान पर अब धीरे-धीरे 'मानव संसाधन विकास' शब्दावली का ज़्यादा इस्तेमाल होने लगा है। यह स्कूल और कॉलेज शिक्षा के क्षेत्र में एक बड़े बदलाव का द्योतक है।

हमारे यहां 'शिक्षा' शब्द के स्थान पर अब धीरे-धीरे 'मानव संसाधन विकास' शब्दावली का ज़्यादा इस्तेमाल होने लगा है। यह स्कूल और कॉलेज शिक्षा के क्षेत्र में एक बड़े बदलाव का द्योतक है। पिछले कुछ वर्षों में तथाकथित 'प्रोफेशनल' डिग्री देने वाले निजी कॉलेजों व डीम्ड विश्वविद्यालयों की संख्या में काफी तेज़ी से विस्तार हुआ है। इन संस्थानों की अकादमिक गुणवत्ता पर निगरानी रखने का दायित्व ऑल इंडिया काउंसिल ऑफ टेक्नीकल एजूकेशन (एआईसीटीई) और मेडिकल काउंसिल ऑफ इंडिया (एमसीआई) जैसी संस्थाओं का है, लेकिन इनकी लापरवाही के कारण कई बार विवादास्पद हालात बने हैं।

बायोटेक्नॉलॉजी में जिस तरह के पाठ्यक्रम और शिक्षण सुविधाओं के साथ बी.टेक. डिग्रियां प्रदान की जा रही हैं, वे किसी 'प्रोफेशन' के लिए विद्यार्थियों को कितना तैयार करती होंगी, इसे आसानी से समझा जा सकता है। इससे पता चलता है कि शिक्षा के क्षेत्र में केवल 'धंधे का मॉडल' हावी है। विज्ञान में तीन वर्षीय स्नातक पाठ्यक्रम करने वाले विद्यार्थी चार वर्षीय 'प्रोफेशनल कोर्स' करने वालों की तुलना में नुकसान में रहते हैं, क्योंकि उन्हें पीएच.डी. करने से पहले दो वर्ष का स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम भी करना होता है। 'एकीकृत पीएच.डी. प्रोग्राम' केवल कुछ संस्थानों तक ही सीमित है। इसके अलावा पीएच.डी. प्रोग्रामों में भी 'प्रोफेशनल' और 'गैर प्रोफेशनल' पाठ्यक्रमों के बीच स्कॉलरशिप में अंतर बरता जाता है।

आज इंजीनियरिंग को विज्ञान से अलग नहीं किया जा सकता और इसलिए स्नातक पाठ्यक्रमों की संरचना की समीक्षा ज़रूरी है। विभिन्न विषयों में कॉलेज डिग्रियों को लेकर जो धारणा बनी है, उसके कारण तो विज्ञान के पाठ्यक्रमों में रुचि घट ही रही है, लेकिन साथ ही स्कूलों में पढ़ाई की गुणवत्ता सम्बंधी मसले भी हैं, जिन पर ध्यान देने की ज़रूरत है।

विज्ञान शिक्षा में रुचि बढ़ाने के लिए सरकार ने कई प्रयोग किए हैं। हाल के वर्षों में नीतिगत मामलों में दखल देने के अलावा विज्ञान शिक्षा के लिए वित्तीय प्रोत्साहन मुहैया करवाना इनमें सबसे प्रमुख है। पैसा सबको लुभाता है और विद्यार्थियों के लिए ऐसी कई छात्रवृत्तियां मौजूद हैं, जो उन्हें विज्ञान में स्नातक पाठ्यक्रम में प्रवेश लेने को प्रोत्साहित करती हैं। डी.एस.टी. का किशोर वैज्ञानिक प्रोत्साहन योजना (केवीपीवाई) कार्यक्रम इनमें सबसे आगे रहा है। भारतीय विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान (आईआईएसईआर) नाम से नए संस्थान शुरू किए गए हैं,

जिनमें विज्ञान के स्नातक पाठ्यक्रम प्रारंभ किए गए हैं। कई प्रतिष्ठित संस्थानों (जैसे भारतीय विज्ञान संस्थान) ने भी ऐसे चार वर्षीय पाठ्यक्रम शुरू किए हैं, जो विद्यार्थियों को विज्ञान में कैरियर बनाने को लेकर प्रोत्साहित कर सकते हैं। इन प्रयोगों की सफलता का पता कुछ वर्षों बाद ही चल सकेगा। कॉलेजों और आर्थिक दृष्टि से कमज़ोर विश्वविद्यालयों को शोध अनुदान मुहैया करवाने वाली योजनाएं पिछले लंबे अरसे से प्रचलन में रही हैं। इनकी सफलता का अंदाज़ा अभी नहीं लगाया जा सकता। उच्च स्तर पर विज्ञान शिक्षा को बढ़ावा देने के प्रयासों पर काफी चर्चा हो चुकी है और कई प्रयोग भी जारी हैं। लेकिन स्कूलों में विज्ञान शिक्षा का क्या माहौल है, इसको लेकर काफी कम बातें होती हैं। हमें इन सवालों पर ज़रूर चर्चा करनी चाहिए - 1. क्या हम स्कूलों में विज्ञान बहुत ज़्यादा या बहुत कम पढ़ाते हैं? 2. क्या हम सही विषयों की पढ़ाई करवाते हैं या ऐसे विषयों की जो अब बासी पड़ चुके हैं? 3. क्या विज्ञान की पढ़ाई संकुचित परीक्षा प्रणाली से बंधी है, जिसके कारण विद्यार्थी आगे जाकर कॉलेज में विज्ञान पढ़ने से कतराते हैं? 4. क्या विज्ञान शिक्षकों की दिक्कतों का ध्यान पाठ्यक्रम तैयार वाली संस्थाएं नहीं रखती हैं?

वर्तमान प्रणाली में जीव विज्ञान से लेकर इतिहास तक तमाम विषयों के व्यापक अध्ययन पर ज़ोर दिया जाता है, भले ही वह कितना भी सतही क्यों न हो। इससे किसी विषय का गहन अध्ययन करने का कोई मौका नहीं मिलता।

इन सवालों के बारे में सोचते हुए मेरा ध्यान विज्ञान की पढ़ाई के तरीके की एक आलोचना की ओर गया: "शिक्षा प्रणाली दिल से कट गई है, जिसका इस बात पर काफी घातक असर पड़ रहा है कि बच्चे कितना और किस तरह सीख रहे हैं। शोध साबित कर चुके हैं कि विद्यार्थी तभी कोई सार्थक बात सीखता है, जब वह गहनता के साथ किसी मुद्दे का समाधान तलाशने की कोशिश करता है। ऐसा तभी संभव हो सकता है, जब साल भर की पढ़ाई में अपेक्षाकृत कम मुद्दों को शामिल किया जाए। लेकिन वर्तमान प्रणाली में जीव विज्ञान से लेकर इतिहास तक तमाम विषयों के व्यापक अध्ययन पर ज़ोर दिया जाता है, भले ही वह कितना भी सतही क्यों न हो। इससे किसी विषय का गहन अध्ययन करने का कोई मौका नहीं मिलता। इसी वजह से पाठ्यक्रम और पाठ्य पुस्तकें बहुत ही सतही और त्रुटियों से भरी होती हैं।" क्या ये शब्द किसी ऐसे भारतीय टिप्पणीकार के हैं जो भारत के स्कूलों में विज्ञान शिक्षा को लेकर चिंतित हैं, जहां केन्द्रीय स्कूल बोर्ड में हाईस्कूल की पाठ्य पुस्तकों का आकार काफी बड़ा हो चुका है? कई पुस्तकें तो आकार में इतनी बड़ी और वज़न में इतनी भारी हैं कि ऐसा लगता है कि उन्हें तैयार करने का मकसद विज्ञान में दिलचस्पी जगाने की बजाय बच्चों की बोझा उठाने की क्षमता में सुधार करना हो। ऐसी पाठ्य पुस्तकें अक्सर 'कमेटी एप्रोच' का परिणाम होती हैं और इसका नतीजा यह होता है कि शिक्षक परीक्षा के पहले इनकी पढ़ाई को किसी तरह समाप्त करने के संघर्ष में ही उलझे रहते हैं।

यह जानकर आश्चर्य होगा कि पाठ्यक्रम और पाठ्य पुस्तकों को लेकर जो सख्त आकलन यहां प्रस्तुत किया गया है, वह अमरीका की स्कूल प्रणाली के संदर्भ में है। इसके लेखक जाने-माने जीव विज्ञानी, यूएस एकेडमी ऑफ साइंसेज़ के पूर्व अध्यक्ष और वर्तमान में *साइंस* पत्रिका के संपादक ब्रूस अल्बर्ट्स हैं। वे बहुत ही साफगोई से कहते हैं, "अमरीका के अधिकांश विद्यार्थियों को तथ्यों से भरी जीव विज्ञान की जो पाठ्य पुस्तकें पढ़ने को दी जाती हैं, उससे उन बच्चों को विज्ञान अनाप-शनाप प्रतीत होता है। इसमें शुष्क निरर्थक शब्दों और रिश्तों की ऐसी अंतहीन सूचियां रहती हैं, जिन्हें याद रखना होता है।"

यह पढ़कर मुझे राहत मिली कि लगभग 50 साल पहले हाईस्कूल में मेरा सामना जिस पाठ्यक्रम से हुआ था, उसमें गणित को छोड़ दें तो विज्ञान के नाम पर ज़्यादा कुछ नहीं था। अधिकांश ज़ोर इतिहास, साहित्य, भाषा और भूगोल पर होता था। विज्ञान सम्बंधी तथ्यों की भारी-भरकम खुराक और विज्ञान को याद रखने की ज़रूरत की शुरुआत तो कॉलेज के दिनों में हुई थी। तब तक विद्यार्थी इस बात का चयन कर लेता था कि उसे क्या पढ़ना है और उसके

बाद बचने के सारे रास्ते बंद हो चुके होते थे।

अल्बर्ट्स ने अपेक्षाकृत सीमित पाठ्यक्रम का जो विचार दिया है, उस पर भारत में भी विचार किया जाना चाहिए जहां स्कूलों की पाठ्य पुस्तकें इस कदर भारी हो चुकी हैं कि ऐसा लगता है कि इन्हें तैयार ही इस मकसद से किया गया है कि विद्यार्थी उन्हें देखकर ही विज्ञान से दूर भाग जाएं। जो लोग विशाल पाठ्यक्रम पर ज़ोर देते हैं, वे स्कूली विज्ञान को 'प्रोफेशनल' पाठ्यक्रमों में प्रवेश लेने के एक पासपोर्ट के रूप में देखते हैं। शिक्षक भी रसायन शास्त्र और जीव विज्ञान जैसे विषयों को कम करने के फैसले का स्वागत ही करेंगे। ये ऐसे विषय हैं, जिनमें तथ्यों का अंतहीन संकलन होता है और इस तरह पेश किया जाता है कि उन्हें पचाना मुश्किल हो जाता है। शिक्षकों के पास ऐसा कोई मौका नहीं होता कि वे विज्ञान को पढ़ाने के तरीके और वैज्ञानिक खोज के उत्साह को संप्रेषित करने की विधियां विकसित करने के प्रयास कर सकें। अल्बर्ट्स कहते हैं कि जीव विज्ञान की पाठ्य पुस्तकों और उन पर आधारित कक्षाओं में शामिल होने के बाद विद्यार्थियों को उस जीव विज्ञान के बारे में कुछ मालूम नहीं होगा, जो वैज्ञानिकों को प्रेरित करता है। अमरीका में यह हो रहा है तो भारत में भी ऐसा ही होता होगा, जहां पाठ्यक्रम और परीक्षा प्रणालियों ने प्रयोगों के लिए कोई मौका नहीं छोड़ा है।

शिक्षक प्रशिक्षण, खासकर विज्ञान और गणित में काफी मायने रखता है। शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के 'राष्ट्रीय मिशन' की घोषणा और उसे तैयार करना अपेक्षाकृत आसान है, लेकिन धरातल पर उसे लागू करने की अपनी चुनौतियां हैं। इसमें सबसे अहम है 'प्रशिक्षकों' का विशाल कैडर तैयार करना जो शिक्षक प्रशिक्षण कार्य की कमान संभाले। यहां पर ऐसी प्रक्रिया को आगे बढ़ाने की सख्त ज़रूरत है, जिसके ज़रिए स्कूली विज्ञान शिक्षक सीधे ही आधुनिक प्रयोग कर सकें और विज्ञान में प्रयोगों की भूमिका के बारे में विद्यार्थियों के समक्ष ज़्यादा से ज़्यादा खुलासा कर सकें। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि शहरी व ग्रामीण स्कूलों और सरकारी व निजी स्कूलों के शिक्षकों की गुणवत्ता में काफी अंतर होता है। राज्यों के बोर्ड और केन्द्रीय बोर्ड द्वारा संचालित पाठ्यक्रमों की विषयवस्तु भी अलग-अलग होती है। पाठ्यक्रमों में एकरूपता लाने की कोशिशों को लेकर कई लोग सहमत नज़र नहीं आते।

स्कूल स्तर पर सुधार के प्रयासों के रास्ते में ऐसी कई बाधाएं हैं, जिनसे पार पाना लगभग असंभव है। इसके बनिस्बत कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में विज्ञान पाठ्यक्रमों में सुधार करना अपेक्षाकृत आसान है। स्नातक स्तर पर पाठ्यक्रम की विषयवस्तु तैयार करने में स्वायत्तता देना संभव है। अल्बर्ट्स कहते हैं कि वर्तमान में प्रचलित सभी विषयों के 'सांगोपांग' अध्ययन के नज़रिए को बदलकर उसके स्थान पर गहनता से किए जाने वाले अनुसंधानों की शृंखला शुरू करने की ज़रूरत है। वे कहते हैं, "इसके लिए हमें पारंपरिक पाठ्य पुस्तकों को छोड़कर ऐसा पाठ्यक्रम तैयार करना होगा, जो किसी एक ही विषय पर गहनतापूर्वक खोजबीन करने का अवसर मुहैया कराए, भले ही उसमें एक महीना या उससे ज़्यादा ही समय क्यों न लग जाए।" हालांकि अल्बर्ट्स का यह सुझाव अमरीकी स्कूलों के संदर्भ में है, लेकिन भारत में स्नातक पाठ्यक्रमों के सम्बंध में भी यह प्रासंगिक हो सकता है। क्योंकि विशिष्टीकरण और 'पूर्ण कवरेज मॉडल' विज्ञान के प्रति उत्साह पैदा नहीं करता।

खोजबीन आधारित शिक्षण के अंतर्गत सामूहिक शोध प्रोजेक्ट्स में शामिल छात्रों की टीमें वे कौशल सीखती हैं, जो वैज्ञानिकों के लिए ज़रूरी होता है; जैसे संप्रेषण कौशल, टीमवर्क और वैज्ञानिक विचारों का विकास।

भारत में इस बात की पड़ताल करने की ज़रूरत है कि स्नातक विज्ञान पाठ्यक्रमों में शोध प्रोजेक्ट आधारित अध्ययन की क्या भूमिका हो सकती है। तीन वर्षीय पाठ्यक्रम में इसे शामिल करना लगभग असंभव है, लेकिन चार वर्षीय कोर्स में ऐसा किया जा सकता है। इस मॉडल का सुझाव अक्सर दिया जाता रहा है, लेकिन इसे कुछ चुनिंदा संस्थानों में ही लागू किया जा सका है। अमरीका में 'खोजबीन आधारित शिक्षण' के प्रयोग जारी है। पारंपरिक कक्षाओं में बैठकर

की जाने वाली पढ़ाई की बनिस्बत इस पढ़ाई के नतीजे काफी अच्छे आए हैं और विज्ञान में रुचि बढ़ाने वाले साबित हुए हैं। सामूहिक शोध प्रोजेक्ट्स में शामिल छात्रों की टीमें वे कौशल सीखती हैं, जो वैज्ञानिकों के लिए ज़रूरी होता है; जैसे संप्रेषण कौशल, टीमवर्क और वैज्ञानिक विचारों का विकास।

शोध आधारित पढ़ाई के प्रयोगों के नतीजों का दस्तावेज़ीकरण किया जा रहा है। इनमें कई उदाहरण हैं जहां जीव विज्ञान जीवन से जुड़ता है। अल्बर्ट्स सुझाव देते हैं कि शोध वैज्ञानिकों और शिक्षकों को मिलकर ऐसे 'नए पाठ्यक्रम की सामग्री और शिक्षण पद्धतियों' के विकास के लिए काम करना चाहिए जो विज्ञान शिक्षा की मौजूदा राह को बदल सकें। अगर विद्यार्थियों को विज्ञान की ओर आकर्षित करना है तो वैज्ञानिक किनारे बैठकर मातम नहीं मना सकते। उन्हें स्कूल-कॉलेजों में विज्ञान शिक्षण में बदलाव के प्रयोगों में सक्रिय भूमिका निभानी होगी। ***(स्रोत फीचर्स)***